Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

कृण्वन्तोविश्वमार्य्यम्

प्रभु है भी ?

(आस्तिकता प्रतिपादक उत्तम लेखों का संग्रह)

(आस्तिकता के प्रबल प्रचारक महर्षि दयानन्द सरस्वती)

लेखक—

साहित्याचार्य पं० बलदेवाग्निहोत्री (वैदिक धर्म विशारद)

सम्पादक—यशपाल आर्यबन्धु

प्रकाशक—

आर्य समाज, हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2362

सम्पादकीय

दो शब्द लेखक के विषय में

आर्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, वैदिक धर्मानुरागी, गम्भीर स्वाध्यायशील साहित्याचार्य पं० वलदेव जी अग्निहोत्री, का जन्म एटा में दिनांक २२ दिसम्वर १६०६ को श्रीमान महाशय राधाकृष्ण जी के घर हुआ था। महाशय राधाकृष्ण जी वस्तुतः महाशय थे। महाशय जो एटा में किसी आर्य समाज के मन्त्री पद को सुशोभित कर रहे थे तव जवकि श्री धर्मपाल (शुद्ध होने से पूर्व अब्दुल गफूर) ने आर्य समाज में प्रवेश करके भी यह छींटा कसा था कि आर्य समाज जव किसी हिन्दू को अपने में प्रविष्ट करता है तव उसकी वैसी शुद्धि नहीं करता जैसी की एक मुसलमान की। महाशय राधाकृष्ण जी ने इसका समुचित उत्तर दिया था। महाशय जी का देहांत इसी मुरादाबाद नगर में ४ फरवरी सन् १६३६ को हुआ। मान्य महाशय जी के निधन की सूचना पा कर श्री पाद पन्डित दामोदर सातवलेकर जी ने अपने दिनांक १३-२-३६ के पत्र में महाशय जी के सुयोग्य पुत्र श्री वलदेव जी को लिखा था कि—"आप उनके सुपूत हैं", तथा श्रीपाद जी ने अपने वैदिक धर्म में श्री आचार्य जी का एक लेख "वेद में हम और हमारे शत्रु" प्रकाशित किया था। और श्रीयुत पण्डित विहारी लाल शास्त्री ने तव उझियानी जिला वदायूं से आचार्य वलदेवाग्निहोत्री को लिखा था कि—"अव तुम्हारे पिता जी जैसा स्पष्टवादी कहां मिलेगा? किन्तु आप जैसे सुयोग्य पुत्र को वह छोड़ गये हैं, अतः वे शोच्य नहीं। आशा है कि आप भी उनके चरण चिन्हों पर चलते हुए वैदिक धर्म में वैसी ही पूर्णभक्ति दृढ़ करते रहेंगे।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य जी ने सन् १९२० में हिन्दी मिडिल उत्तीर्ण कर तथा उसी वर्ष कासगंज (जि० एटा) जाकर श्री ब्रह्मचारी आनन्द किशोर जी (जिनके विषय में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के ७५ वर्षीय इतिहास में पृष्ठ ७१ पर लिखा है कि वे ऋषि दयानन्द सरस्वती के एक परम भक्त थे तथा महान तपस्वी एवं सिद्धवाक् व्यक्ति थे।"[2]) से यज्ञोपवीत ग्रहण कर, इस मुरादाबाद नगर के प्रसिद्ध विद्वान श्री पंडित जीवाराम उपाध्याय जी से अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत भाषा का अध्ययन आरम्भ किया । सन् १९२५ में बलदेवार्य संस्कृत पाठशाला मुरादाबाद में प्रसिद्ध आर्य विद्वान श्री पं० बदरी दत्त जी से संस्कृत भाषा पढ़ते हुए महर्षि दयानन्द सर–स्वती की जन्मशताब्दी में मथुरा जाना निश्चित कर परीक्षा न दी और फिर खुर्जा के एन. आर. संस्कृत कालेज के सन् १९२८ में सम्पूर्ण मध्यमा उत्तीर्ण की, उसके पश्चात महाविद्यालय ज्वालापुर के पूज्य स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी से अधीतविद्य होकर तथा शास्त्री परीक्षा के खण्ड उत्तीर्ण कर श्रद्धेय पं० शालग्राम जी शास्त्री साहित्याचार्य (जिन पूज्यपाद ने कभी गुरुकुल कांगड़ी में श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पश्चात श्री स्वामी समर्पणानन्द जी को भी पढ़ाया था और जिनकी साहित्य दर्पण की प्रसिद्ध हिन्दी टीका भी है) से लखनऊ में विद्याध्ययन कर लखनऊ यूनिवर्सिटी के प्राच्य विभाग से प्रथम वर्ष ही "साहित्याचार्य" उत्तीर्ण किया। लखनऊ से ही आचार्य जी ने वैदिक धर्म विशारद परीक्षा का तृतीय खण्ड उत्तीर्ण किया, जिसमें आपने संयोजक श्रीयुत पं० मुन्शीराम जी शर्मा द्वारा प्रेषित तृतीय पारितोषिक में अनेक पुस्तकें उपलब्ध की। आचार्य जी ने हिन्दी भाषा की अन्य कई परीक्षायें उत्तीर्ण कर सन् १९३९ में पंजाब की प्रभाकर परीक्षा लाहोर से ६०० में से पूरे ४०० अंक प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धेय आचार्य जी सन् १९३९ से १९५० तक मुरादाबाद की नगर पालिका के स्कूलों में धर्मशिक्षा निरीक्षक रहे. तत्पश्चात सन् १९५१ से १९६८ तक के०पी० इन्टर कालेज, (वर्तमान एस०आर० ए०एन० इन्टर कालेज) में अत्यन्त सफलतापूर्वक हिन्दी और संस्कृत भाषा पढ़ाते रहे।

लखनऊ से आते ही आप आर्य समाज और आर्य कुमार सभा के कार्यों में जुट गये। उन दिनों श्रीयुत पं० शंकर दत्त जी शर्मा तथा श्री जगत नाराण जी वर्मा आर्य समाज स्टेशन रोड, मुरादाबाद के क्रमशः प्रधान और मन्त्री थे। आचार्य जी स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी की हीरक जयन्ती के बृहद यज्ञ में वेद-पाठी रहे। आपके पिताजी महाशय राधाकृष्ण जी और वहनोई श्री हरिशंकर जी पर उनकी दयानतदारी के कारण स्व० महात्मा नारायण स्वामी जी की विशिष्ट कृपा दृष्टि थी। श्री आचार्य जी महर्षि की जन्म शताब्दी के अतिरिक्त महर्षि की दीक्षा शताब्दी मथुरा और महर्षि की शास्त्रार्थ शताब्दी काशी भी देख चुके हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश की हीरक जयन्ती तथा आर्य समाज के मेरठ, कानपुर तथा दिल्ली के शताब्दी महासम्मेलनों में तो इन पंक्तियों के लेखक को भी श्री आचार्य जी के साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

थामस ए, केम्पिस ने कहा था-"मैंने प्रत्येक स्थान पर विश्राम खोजा, किन्तु वह एकान्त कोने में बैठकर पुस्तक पढ़ने के अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं हो सका" श्री गुरुदेव का भी कुछ ऐसा ही स्वभाव हैं। जब आप कायस्थपाठशाला में रहते थे तब वहां और आर्य समाज हरथला, एवं महिला आर्य समाज स्टेशन रोड, मुरादाबाद के भवन में भी रहते हुए आप को सर्वथा एकान्त में पुस्तकों के ढेर मध्य बैठा देखा जा सकता है। वस्तुतः आपको "पुस्तक कीट"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाये तो अनुचित न होगा। वेद और वैदिक ग्रन्थों, मनुस्मृतियों ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और गीताओं का तो आपके पास पर्याप्त संग्रह है क्योंकि पुस्तकों के क्रय करने में आप सदा मुक्त हस्त रहे हैं। सत्य तो यह है कि थोरो के इस कथन को आपने हो पूर्णतया चरितार्थ किया है कि–"पुराना कोट पहनो और नई पुस्तक खरीदो।" उनके निजी पुस्तकालय में कमोवेश २५०० पुस्तकें होंगी।

साहित्य साधना–

श्री आचार्य जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन अध्ययन-अध्यापन तथा लेखन आदि कार्यों में लगा दिया है। आपके पास अव भी विभिन्न विषयों पर सैकड़ों हस्तलिखित अमुद्रित लेख पड़े होंगे, जवकि अनेकों लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुके हैं। सन् १९३३ में आपकी प्रथम लघु पुस्तक "प्रभु सन्देश" वैदिक ग्रन्थ माला के प्रथम पुष्प के रूप में पं० जीवाराम उपाध्याय को सरस्वती प्रेस, मुरादावाद में प्रकाशित हुई थी और श्रावणी सम्वत् १९६५ में "धर्म शिक्षा" दो भागों में लक्ष्मी नारायण प्रेस, मुरादावाद में प्रकाशित हुई थी। जून सन् १९६२ में "वैदिक विवाह का उद्देश्य और उसकी पूर्ति" नामक एक और लघु पुस्तिका प्रकाश में आई जो कि पब्लिक प्रेस मुरादावाद से प्रकाशित हुई। अगस्त सन् १९६८ को वैदिक संस्थान वालावाली से विभिन्न सुयोग्य लेखकों के लेखों के संग्रह स्वरूप एक सुन्दर पुस्तक "हमारी राष्ट्रभाषा और उसके कुछ महत्वपूर्ण पहलू" प्रकाशित हुई जिसमें श्री आचार्य जी का एक विद्वत्ता पूर्ण लेख "हिन्दी साहित्य और महर्षि दयानन्द" प्रकाशित हुआ और सन् १९७६ में इन पंक्तियों के लेखक के साथ संयुक्त रूप से एक और दार्शनिक पुस्तक "कर्म फल प्रश्नोत्तरी" की रचना भी श्री आचार्य जो ने की जो कि आर्य समाज हरथला रेलवे कालोनी मुरादावाद के २६वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिनांक १०-१०-७६ को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आर्य समाज हरथला कालोनी द्वारा प्रकाशित तथा निशुल्क वितरित की गई। हरथला आर्य समाज की रजत जयन्ती दीपिका १९७५ में भी श्री आचार्य जी का एक विस्तृत लेख—"आर्य समाज ही क्यों?" प्रकाशित हुआ था। इन पंक्तियों के लेखक को यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसकी प्राय: सभी पुस्तकों की भूमिका श्री आचार्य जी ने ही लिखी है। वस्तुत: इस अकिंचन पर गुरुजी को कृपा का ही सुपरिणाम है कि वह कतिपय साहित्य सुमन आर्य जगत के अर्पण कर सका। आचार्य जी जब तक कायस्थ पाठशाला में कार्यरत रहे तब तक उस कालेज की वार्षिक पत्रिका के सम्पादक भी रहे।

आचार्य जी वर्षों आर्य कुमार सभा, मुरादाबाद के मन्त्री तथा आर्य समाज गंज, स्टेशन रोड, मुरादाबाद के मन्त्री भी रह चुके हैं। आर्य कुमार सभा हरथला कालोनी, के भी आप संरक्षक रह चुके हैं। यद्यपि सम्प्रति आप आर्य समाज गंज, स्टेशन रोड में रह रहे हैं, किन्तु नगर की सभी आर्य समाजों पर आप का समान स्नेह है। आर्य समाज हरथला कालोनी, को खड़ा करने में तो आप का बहुत बड़ा हाथ है। आप ने आर्य समाज मन्दिर, हरथला कालोनी के भवन निर्माण हेतु एक हजार रुपये का सात्विक दान देकर उत्साहित किया था। आर्य समाज सूबेदार गंज, इलाहाबाद के भवन निर्माण में भी आपने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया था। आर्य समाज हरथला कालोनी, के साहित्य प्रकाशन यज्ञ में तो प्रतिवर्ष आप की विशेष आहुति पड़ती ही है। एक छत का पंखा भी आपने आर्य समाज हरथला कालोनी को दान दिया था। हरथला समाज में ही सन्   में दो मास का संस्कृत प्रशिक्षण शिविर आपने लगाया था। यह सब आर्य समाज हरथला के प्रति आप के प्रेम का द्योतक है।

श्री आचार्य जी ने अविवाहित रह कर आर्य जगत की सेवा की है। अपना सम्पूर्ण जीवन आपने वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

में तथा आर्य समाज के हित साधन में लगा दिया है। किन्तु दुःख है कि आर्य समाज ने इस विद्वान् की सर्वथा उपेक्षा ही की है। मेरा विश्वास है कि आप जैसा विद्वान कहीं और होता तो निश्चय ही समुचित सम्मान पाता। आर्य समाज स्टेशन रोड के श्री रामचन्द्र आर्य सेवक को यह श्रेय प्राप्त है कि वे तथा उनका परिवार श्री आचार्य जी की सेवा सुश्रूषा में लगा है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य समाज की आन्तरिक कलह से आचार्य जी अत्यन्त दुखी हैं। और प्रभु से प्रार्थी है कि हम आर्यों को सुम्मति प्रदान करें कि हम सब परस्पर प्रीति से आर्य समाज के कार्य को आगे बढ़ाने में समर्थ हो सकें। वे प्रायः यही कहा करते है—"हम रहें न रहें, आर्य समाज बना रहना चाहिये।" काश ! आर्य जन उनकी सुन पाते।

प्रस्तुत पुस्तक—

गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्रीयुत पं० धर्मवीर जी आयुर्वेदालंकार की शुभ प्रेरणा से इन पंक्तियों के लेखक को श्री शास्त्री जी के लेखों को देखने एवं पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लेखक ने यह अनुभव किया कि इन लेखों में बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। श्री आचार्य जी के सम्मुख इन्हें क्रमशः प्रकाशित करने का कई बार प्रस्ताव रखा और हर बार यह प्रस्ताव टलता ही रहा कि यह कार्य करे कौन? अन्त में मैंने यह कार्य भार अपने ऊपर लिया ताकि इस विद्वान् का महान कार्य प्रकाश में आ सके। और इसके लिये ईश्वर विषयक लेखों से ही प्रारम्भ करने की सोची गई। अतः प्रस्तुत पुस्तक आचार्य पं. बलदेवाग्निहोत्री के कतिपय ईश्वर विषयक लेखों का संग्रह है जो कि लेखक उनके विशाल लेख संग्रह में से छांट लाया था। कई लेख तो इतने पुराने तथा जीर्ण शीर्ण अवस्था में थे कि उन्हें हाथ से छूने से ही कागज फट जाता था। अतः उनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास बैठकर लेखों को लिपिबद्ध कर पुनः उनसे शोधित करवा टाइप कर प्रेस को दिये जा सके। फिर प्रेस में भी प्रूफ आदि शोधने का कार्य करना ही पड़ा। जो भी हो हमें प्रसन्नता है कि पाठक आचार्य जी के ईश्वर विषयक विचारों से अवगत हो सकेंगे।

आज के युग में जब कि विज्ञान अपनी चरम सीमा पर है, ईश्वर की चर्चा करते थोड़ा डर भी लगता है जैसा कि अकबर इलाहाबादी ने कहा है—

रकीबों ने लिखाई है रपट जा जा के थाने में,
कि अकबर नाम लेता है खुदा का इस ज़माने में।

इस नास्तिकता भरे युग में ईश्वर की चर्चा करना, कभी-२ स्वयं को उलझन में डालने के सदृश्य हो जाता है। किन्तु नास्तिकता के दुष्परिणामों को देखते हुए ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है। स्वामी धर्मानन्द जी ने ठीक ही लिखा है कि—"सब धर्म प्रेमी सज्जनों को यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि प्रिय भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् इस धर्म प्रधान देश में कम्यूनिज्म समाजवाद तथा विज्ञान के नाम पर अनीश्वरवाद और नास्तिकता का प्रचार बढ़ता जा रहा है, जिसका भयंकर प्रभाव युवक युवतियों के ऊपर अनाचार, चरित्र-भ्रष्टता, अनैतिकता आदि की वृद्धि के रूप में हो रहा है। इस प्रवृति को रोकने के लिये सब सुशिक्षित आस्तिकों को अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिये।" (देखें भूमिका, वैदिक ईश्वरवाद ओर आधुनिक विज्ञान, सत्य प्रकाशन, मथुरा, पृष्ठ ७) श्री स्वामी जी के इस आदेश के अनुसार आर्यों का यह प्रयत्न है। आशा है प्रस्तुत पुस्तक नास्तिका के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होगी। इस पुस्तक के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन का सारा व्ययभार स्वयं वहन करते हुये भी, इसके प्रकाशन का अधिकार आर्य समाज, हरथला कालोनी को देकर श्री आचार्य जी ने अपनी उदारता का ही परिचय दिया हैं। इसके लिये आर्य समाज, हरथला कालोनी, आचार्य जी का अत्यन्त आभार मानती है।

यशपाल आर्यबन्धु
का. मन्त्री,
आर्य समाज हरथला रेलवे कालोनी,
मुरादाबाद।

दिनांक २३-१०-७८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

* परमात्मा है भी ? *

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'संस्कार विधि' में "य आत्मदा" मन्त्र के अर्थ में लिखा है कि "जिसको सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं………………हम लोग उस परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात उसी की आज्ञा पालन में तत्पर रहे।" जहां स्वामी जी के इन शब्दों से 'परमात्मा की भक्ति क्या है?' यह स्पष्ट होता से वहां कुछ लोग यह प्रश्न भी उठा सकते हैं कि पहले परमात्मा है भी? यह तो सिद्ध हो जावे। आगे की बात आगे देखी जायेगी, क्योंकि कम्युनिस्ट विद्वान् तो उसको मानते ही नहीं।

इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि हम 'वेद' अथवा वेदानुयायी दयानन्द आदि की मान्यता के आधार पर तो आप को यह मानने के लिये बाधित करते नहीं है कि परमात्मा है। परन्तु यहां तो स्पष्ट कथन है कि यदि परमात्मा नहीं है, तो उसको मान बैठना जहां अविद्ववत्ता है वहां यदि परमात्मा है, तो उसका न मानना क्या अविद्ववत्ता नहीं है? सत्य बात तो यह है कि बहुत सी डिग्रियां प्राप्त कर लेना मात्र विद्ववत्ता नहीं है। विद्वान् तो विद्यावान को कहते हैं और जो वस्तु जैसीं हो उसको वैसा ही मानना "विद्या" है।

अब हम परमात्मा को न मानने वालों से यह पूछने का साहस करते हैं कि क्या आपने अपने आपको उस जनक तथा जननी के शुक्र तथा रज से बनते देखा है, जिसे आप अपना जनक तथा जननी मानते हैं? जिस आंख पर आज आप इतना भरोसा कर रहे हैं कि जिसके द्वारा परमात्मा को न देखने से आप उसको मानना ही नहीं स्वीकार करते, वह आँख ही कौन से भरोसे की चीज हैं? बालू में जल का भ्रम तथा रज्जु में सर्प का भ्रम क्या इन्हीं आंखों को नहीं होता? फिर भौतिक आंखों से अभौतिक वस्तु देख भी कैसे सकते हैं?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यहां अल्लाह, गाड और ईश्वर को मानने वालों तथा ईश्वर की ओर से नाज़िल, कुरान, बाईबिल और वेद के प्रमाण नहीं दे रहे क्योंकि इन पर तो कम्युनिस्ट कह ही देगा कि ये तो उसके अस्तित्व की बात कहते ही कहते हैं, क्योंकि यदि ऐसा न कहते तो इन्हें कोई इल्हाम ही क्यों कहता?

अच्छा तो इल्हामों की बातें जाने दें, और आंख भी ठहरी बे-भरोसे की, हृदय उसकी सत्ता को जब अनुभव करेगा जब, तब फिर बुद्धि पर आ जाइए और देखिए—हम जीवधारियों-पशुपक्षियों ने तो क्या मनुष्यों ने भी ये भूमण्डलादि रचे नहीं हैं, हम तो इनमें तब शरीरधारी जन्में हैं जब यह बन चुके और परमात्मा को हमने माना नहीं। यहां हमें उसके नाम पर झगड़ना नहीं है आप उसे 'परमात्मा' नाम से न पुकारना चाहें यह आपकी इच्छा। परन्तु जीवात्माओं और परमात्मा के भूमण्डलादिकर्त्ता न होने पर बच रही प्रकृति, वह यदि सृष्टि को स्वयमेव रच देती है तब तो वह सृष्टि के रचे जाने में उपादान कारण ही नहीं अपितु निमित्त कारण भी है, अन्यथा प्रकृति सृष्टि रचना में उपादान कारण ही है। ओर यह तो हम मानते ही हैं कि परमात्मा जगतकर्त्ता ने जगत को प्रकृति उपादान कारण से रचा है। हमने कब कहा कि घड़े को कुम्हार बिना मिट्टी के, अंगूठी को सुनार बिना सोनें के- कुर्त्ते को दर्जी ने बिना कपड़े के और घड़ो को घड़ीसाज ने बिना घड़ो के पुर्जों आदि से बनाया है परन्तु श्रीमान जी ! यहां तो क्रमशः कुम्हार, सुनार, दर्जी और घड़ा साज को इनका कर्त्ता स्वीकार कर लेते हैं और सृष्टि को घड़ी के रूप में ही स्वीकार कर परमात्मा रूपी घड़ी साज के मानने से बचते हैं।

हम न तो वेदादि प्रमाण दे रहे हैं और आंख भी ठहरी बेभरोसे की और इससे दीखने वाला अस्तित्व दिखाई भी कैसे दे सकता है,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तव मतिमान पाठक इतना तो सोचें ही कि हममें से किसी ने भी अपना अथवा दूसरे का मन, आंख से देखा नहीं है और न आज तक किसी डाक्टर ने यह दावा किया है कि मैंने यन्त्रों द्वारा किसी का मन देखा है परन्तु आपका यह तो अनुभव है कि आप में या आपके प्रेमी में मन है। इस अदोख को भी आप न मानते तव तो हम आपको ठीक जानते। अब तो यह सिद्ध हो गया है कि अदोख भी होना सम्भव है—यद्यपि हम यह नहीं मानते हैं कि कोई किसी को भी अदोख कहकर हमसे उसका अस्तित्व स्वीकार करा ले। किसी ने आज तक दर्द को इन आंखों से देखा तो है नहीं, पर माना सव ने है। क्यों? आप ही सोचें।

अव हम सृष्टि को कार्य सिद्ध करते हैं जिससे इसके उपादान कारण के अतिरिक्त इसका कर्त्ता या रचयिता, परमात्मा सिद्ध होगा। कुछ लोग कह भलें ही दें कि जगत अनादि है, परन्तु आप सोचें जिस वस्तु में संयोग और वियोग हो, उसे कार्य कहते हैं। जगत के अन्दर भूमण्डलादि में जव अणु परमाणुओं का संयोग हैं, भूमण्डलादि कार्य हुए और जिसके ये अंग हैं वह कुल भी फिर कार्य हुआ। ऐसा नहीं कि घड़ी का पुर्जा तो कार्य है परन्तु घड़ी कार्य नहीं है।

यहां प्रश्न यह है कि वह संयोग या कभी भी उनका वियोग प्रकृति का स्वभाव है, तो स्वभाव वश संयोग में वियोग कूद पड़ने से न कभी संयोग हो सकेगा ओर वियोग में संयोग कूद पड़ने से न कभी वियोग सम्भव होगा। परन्तु प्राय: सभी वैज्ञानिक यह स्वीकारते हैं कि इनके रचे जाने में संयोग है और कभी टूटने में वियोग होगा जो कि इनके वनाने वाले को प्रकृति से भिन्न एक चेतन सिद्ध करता है कि जो जव जोड़ना ठीक समझता है तव जोड़ता है और जव तोड़ना ठीक समझता है तव तोड़ता या वियुक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
करता है। यदि यह जोड़-तोड़ प्रकृति मान लें तो क्या आप यह भी मान लेंगे कि कभी मुद्रणालयों में, केसों में से सीसे के अक्षर स्वयं कूद-कूद कर स्टिक में यथास्थान जमकर शेक्सपियर का ड्रामा वन जायेगा या कालीदास के नाटक अथवा सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ और फिर वे स्वयमेव डिस्ट्रींब्यूट होकर पुनः यथा स्थान पहुंच जायेंगे? यदि नहीं मानेंगे तो फिर आपको मानना ही चाहिये कि यह जोड़-तोड़ अर्थात सृष्टिकार्य में संयोग और फिर अन्त में वियोग किसी चेतन का है, जिसे हम वैदिक-धर्मी परमात्मा, परमेश्वर, ओम् के नाम से पुकारते है। आप उसे किसी भी नाम से पुकारें, परन्तु मानें अवश्य क्योंकि प्रत्येक ज्ञानपूर्वक काय का कोई चेतन कर्त्ता होता है।

आप अपने शरीर को वैद्यों या डाक्टरों द्वारा निरोक्षित रचना पर दृष्टिपात करें, आपके शरीर में कहां कौन अंग अंड-बंड वन गया है। जव हमारा शरीर गर्भ में हमारी माता तथा जनक पिता ने नहीं वनाया और न हमने, तव यदि जड़ प्रकृति से स्वयमेव वनता तव वह कैसा होता? नर और मादा के अंग विशेष में भेद करने करने वाला कोई उस रहस्य को जानता है कि इस भेद रखने से ही आगे सृष्टि चलेगी, नहीं तो जड़ प्रकृति उस भेद को क्या रखती?

भूमण्डल को द्वविविध गतियुक्त करना कर्त्ता को चेतन सिद्ध करता है—एक गति से अपनी कीली पर चक्कर लगा लेने पर चौवीस घण्टों का दिन रात होता है, जिससे लोग विश्राम पा सकते हैं और दूसरी गति से सूर्य के चारों ओर घूमने में लगभग ३६५ दिन लगते हैं, जिससे वर्ष की गणना होती है और विभिन्न ऋतुओं का निर्माण होता है। इससे भूमण्डल को गोल बनाना, जिससे उसे घुमाने में सुविधा रहे और उक्त द्वविविध गति देना भूमण्डल के कर्त्ता को चेतन सिद्ध करता है, जो हम सशरीर जीवात्माओं और जड़ प्रकृतिसे अतिरिक्त है, उसको आप किसी भी नाम से स्वीकार करें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द सरस्वती शरीर की अद्भुत रचना तथा सृष्टि रचना को देखकर रचयिता के बोध होने की बात स्वीकारते हुए लिखते हैं–"देखो। शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप, मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रशासन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थानविशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके विना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त, पत्र, पुष्प, फल, मूल निर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचना, अनेकानेक कीड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भो नहीं कर सकता। जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसा किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदितहुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनाने वाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

महर्षि ने ईश्वर की सिद्धि में एक और प्रमाण भो दिया है। यथा–"सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से"। हम देखते हैं कि महर्षि यहां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण का भी आश्रय ले रहे हैं। यहां महर्षि का अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्ष में हमें गुणी का नहीं गणों का वोध होता है और जिसके आधार पर हम गुणी की विद्यमानता का अनुमान लगा लिया करते हैं। न्यायदर्शन के आधार पर महर्षि लिखते हैं—"जा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शव्द स्पश, रूप, रस, गन्ध, सुख, दु:ख, सत्यास्तय विषयों के साथ सम्वन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो। अव विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथ्वी उसका आत्मा-युक्त मन में प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना-विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। ओर जव आत्मा, मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छो वात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय, जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जातो है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, नि:शंकता ओर आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा को ओर से हैं। और जव जोवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जव परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या संदेह है? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है।" महर्षि के इस सिद्धांत को तो आज के विज्ञान को भी मानने के लिए वाध्य होना पड़ा है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० मास्टरमैन का तो स्पष्ट कथन है कि—"जितनी भी उस परमेश्वर की रचना को हम खोज करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हैं, उतना ही उसके अस्तित्व में हमारा विश्वास बढ़ता ही जाता है।" वस्तुतः इस भौतिक संसार में जो सर्वत्र क्रम, व्यवस्था और नियम दृष्टिगोचर होता है, वह एक चेतन व्यवस्थापक अथवा नियामक की ओर इशारा करता है। आज का विज्ञान भले ही उसे किसो नाम से पुकारे। स्वामी सत्य प्रकाश जी ठीक ही लिखते हैं– "जिस वस्तु के पोछे प्रारूप (डिजाइन) है, कला कीं एक कृति है, एक उद्देश्य है, भिन्न-भिन्न प्रकार के नमूने हैं जिसमें आप एक छांट सकेंगे–ये वातें इस वात की स्पष्ट द्योतक हैं कि उसके पीछे एक कुशल कलाकार की शक्ति है, जो अपनी कला का विशेषज्ञ है, जिसमें अपनी वस्तु के निर्माण की योग्यता है और जो एक निश्चित उद्देश्य के हेतु प्रयत्नशींल है।"

अव हम लेख वृद्धि को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रश्नोत्तरों के विषय में आपको अन्यत्र कुछ पढ़ने को प्रेरणा करेंगे। आप कृपया आत्म विवेक के द्वारा इन ग्रन्थों या लेखों को आदि से अन्त तक पढ़ तो लीजिये।

१–"आस्तिक–विचार" लेखक-श्री प० देवप्रकाश जी २–'आस्तिकावाद' लेखक–श्री पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, ३–"तीन अनादि सत्ताऐं" लेखक–डा· रामनाथ चोपड़ा, ४–"आर्य सिद्धांत" (उर्दू) लेखक–श्री दीवान चन्द एम.ए., ५–"डाक्टर आन्इस्टीन और व्रह्मान्ड" अनुवादक श्री विद्याभूषण जी, ६–"न्यायकुसुमांजलि" पं० जगदीश चन्द्र शास्त्री, ७–"विश्व को पहेली" लेखक–वावू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, ८–'नास्तिक–वाद' लेखक श्री देवेन्द्र नाथ शास्त्री, ९–"ज्ञान सरोवर" भाग-१ शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार–१९५५ १०–"सृष्टि विज्ञान" श्री पं० आत्मा राम जी अमृतसरी, ११–"आकाश तत्व वोध" प्रो. शंकर दयाल एम. ए. मेरठ, १२–"व्रह्मांड और पृथ्वो" लेखक श्री राम स्वरूप चतुर्वेदी तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, १३–"ईश्वर की सत्ता और महत्ता" सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, १४–"ईश्वर संसार के वैज्ञानिकों की दृष्टि में" अनुवादक श्री पं० क्षितीश कुमार वेदालंकार।

लेखक का ऐसा विश्वास है कि आप विवेक पूर्वक इन और इन जैसे अन्य भी अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात अवश्यमेव उस "अस्ति" को स्वीकार करेंगे जो जीवात्माओं और जड़ प्रकृति से अतिरिक्त चेतन है और जिस वाच्य को वैदिक धर्मी परमात्मा, परमेश्वर, अथवा ओम् वाचक पद से पुकारते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ईश्वर का स्वरूप *

हम जीवात्मधारियों और प्रकृति से भिन्न, ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म आदि वाचक पदों के वाच्य को आपके समक्ष प्रस्तुत कर अब उसके विषय में आपके सामने यह रखते हैं कि वह है कैसा? यहां भी हम आपको बाधित नहीं करते कि आप उसे वैसा ही मान लें, कि जैसा हम कह दें। आप का जी करे तो आप वैसा मानें। आप शीर्षक में 'रूप' शब्द का प्रयोग पाकर यह न मान बैठें कि उसकी कोई सूरत–शक्ल या रूप है किन्तु जैसे निरूपण में भी 'रूप' आता है वैसा इसमें, क्योंकि जो सूरत शक्ल से रहित जीवात्माओं तक में है वह सूरत शक्ल वाला हो ही नहीं सकता। दूसरे यह कि उसे साकार भी कह देने वाले यही कहते हैं कि वह निराकार साकार हो जाता है अर्थात उसे निराकार वे भी मानते हैं, तब उसकी निराकारता तो सिद्ध है और साध्य साकारता तो सिद्ध होने पर सिद्ध ठहरेगी अन्यथा असिद्ध।

यहां हम उसकी साकारता का खण्डन करने नहीं बैठे हैं कि वह साकार होने पर सविकार भी रहेगा। अस्तु। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज का दूसरा नियम यह दिया है कि–"ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनीं योग्य है।" यहां "उसी की" शब्द घोषित कर रहा है कि केवल वही हमारा उपास्य है अन्य कोई नहीं। "अन्य कोई क्यों नहीं?" का उत्तर आप फिर पावेंगे। परन्तु केवल वही उपास्य है–इस विषय में ऋग्वेद १०/८०/३ के "देव एकः", ऋग्वेद १/७/९ के "स एकः" ऋग्वेद १/४८/७ के "यः एकः"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तथा ऐसे अनेकों शब्द उस एक को ही उपास्य ठहरा रहे हैं और अथर्ववेद के तेरहवें काण्ड में "न द्विवतीयो न तृतीयो" कहकर तो यह अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है कि वह दूसरा, तीसरा आदि नहीं है, वह तो एक "सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति" इस अथर्वोक्त मन्त्र ने तो "हाथी के पैर में, सव के पैर" कहावत वाली वात कह दी कि सव देव इस एक में एकवृत्त हैं, अतः वही उपास्य है। मनष्य में समस्त देव इन्द्रिय जैसे जीवात्मा के अधीन हैं, वैसे अन्यदेव उस परमात्मदेव के इन्द्रियरूप भलें ही हों, वे उपास्य नहीं हैं क्योंकि अथर्व २/२/२ के अनुसार वह परमात्मा सूर्यत्वक् है और यजुर्वेद के के अन्तिम मन्त्रानुसार "आदित्य में जो पुरुष है, सो वह "ओम" नामक परब्रह्म है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ में "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि" और अन्त में "त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्" कहा है। इस कथन की वेदमूलकता भी उपर्युक्त २९वें और तीसवें मन्त्रों से स्पष्ट है कि पहले में "एक-म्मत्वा वेद प्रत्यक्षम्" और दूसरे में "इन्द्रं त्वा वेद प्रप्यक्षम्" आया है। यहां हम इतना निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि वह ब्रह्म तो प्रत्यक्ष है क्योंकि अक्षम् अक्षम् प्रति विद्यते इति प्रत्यक्षम् परन्तु जन साधारण उस अगोचर को प्रत्यक्ष कर नहीं पाते क्योंकि वह अप्राकृतिक होने से गन्ध रस रूप स्पर्श और शब्द रहित होने सें हमारे इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है। यदि वह इन्द्रियग्राह्य होता तो यजुर्वेद ४०वं अध्याय का ८ वां मन्त्र "स पर्यगाच्छुक्रमकायम्......" उस ब्रह्म को नस नाड़ी के वन्धन में आने वालो काया से रहित न कहता। क्योंकि शरीरी तो इन्द्रयातीत होता नहीं है साथ ही यह, कि वह सदा शुद्ध है कुछ मिन्टों या सैकिण्डों को भी अशुद्ध नहीं होता परन्तु मलमूत्रनिसर्जक शरीरी कुछ समय के लिए तो अशुद्ध हो ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाता है। वह ब्रह्म सदैव अपापविद्ध है परन्तु श्री राम चन्द्र जी ने कहा है–"यह हमारे किसी कर्म का ही फल है, इससे मुझे कोई दुःख नहीं है।" यदि वे अपने को ईश्वर समझते तो ऐसा नहीं कहते। जब लक्ष्मण युद्ध में मूच्छित हो जाते हैं तो राम कहते हैं, "पता नहीं पिछले जन्म में मैंने कौन सा दुष्कर्म किया है, जो मेरा धर्मात्मा भाई मेरे सामने मरा पड़ा है।" अब यदि वे ईश्वर होते तो ऐसा क्यों कहते (देखिए, ईश्वर का स्वरूप, अवतारवाद, तथा मूर्तिपूजा', लेखक प्र. रमेश चन्द्र त्रिवेदी, एम.ए. पृष्ठ ५-६ सन् १९७५) इस प्रकार वह ईश्वर सच्चिदानन्द और निराकार सिद्ध होता है। साकार होने से निर्विकारता में बाधकता सम्भव है, वह तो सदैव पवित्र है, वह नित्य होने से अनादि, अजन्मा, अजर, अमर और अनन्त भी है। वह सृष्टिकार्य का कर्त्ता है। परमसूक्ष्म ब्रह्म, जीवात्माओं के भी भीतर विद्यमान होने से सर्वान्तिर्यामी है। वह इन्द्रियातीत सुख दुःख से रहित आनन्द यों है कि वह सृष्टि के नाश से दुःखी नहीं होता। वह तो अथर्व, १०/८/४४ के अनुसार अकाम और "रसेन तृप्तः'= आनन्दमय तथा 'कुतश्चन न नूनः'=कहीं से भी न्यून नहीं है।

श्रीमन् ! उसकी सर्वशक्तिमत्ता का स्पष्टीकरण महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में पढ़ लेने की कृपा करें। वह हमारे कर्मों का यथार्थ फल देने वाला होने से न्यायकारी और स्वभावतः दयालु है, उस जैसा कोई जीवधारी नहीं और न जड़ प्रकृति है अतः वह अनुपम है, वह लोकों के आधारों का भी आधार अतः सर्वाधार है। वह धाता सूर्य चन्द्रादि को यथापूर्व रचता और धारण करता है। वह सर्वव्याप्यों में सर्वव्यापक है। वह अभय है तभी न्यायकारी है क्योंकि सभय तो न्याय कर ही नहीं सकता, वह तो पिचक जाता है।

अतः हम उसी ब्रह्म की उपासना करें, जिसका वर्णन वेद के वास्तविक अर्थ से उपलब्ध होता है। यहां हम हरदिल अज़ीज़ी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्कर में आकर यह नहीं कह रहे हैं कि सब रास्ते उसी एक मंजिल पर पहुंचते हैं क्योंकि बहुत रास्ते तो रास्तागीरों को मंजिल से दूर ही पटक देते हैं। जो मार्ग ब्रह्मकेन्द्र से नहीं निकला, उससे जाने वाले यात्री केन्द्र को कैसे पहुंच सकेंगे। अतः आप इस सम्बन्ध में आत्मविवेकपूर्वक निम्नांकित पुस्तकें आद्योपान्त पढ़ने का भी कष्ट करें—

(१) विभिन्न मतों में ईश्वर, लेखक—आचार्य डा. श्रीराम आर्य कासगंज, (२) शंकर भाष्यालोचन, लेखक—पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, (३) अद्वैतवाद, लेखक वही, (४) वेदामृत, सम्पादक श्रीपाद, पं० दामोदर सातवलेकर, (५) ईश्वर भक्ति, लेखक-स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, (६) प्रभु भक्ति तथा (७) प्रभु दर्शन दोनों महात्मा आनन्द स्वामी, (८) ओंकार निर्णय, लेखक पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, (९) ओंकार उपासना, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, (१०) ईश्वर मिलाप, स्वामी सर्वदानन्द जी, (११) दयानन्द दर्शन श्री वेद प्रकाश गुप्त।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* प्रभु महत्ता की इयत्ता *

प्रभु की महत्ता, महिमा अथवा महत्व का विचार किये जाने पर विचारक के मन में सर्वप्रथम यह प्रश्न स्वभावत: उपस्थित होता है कि किस विषय की महत्ता? नाप या परिमाण के विषय की, या कारीगरी की दृष्टि से उस के कर्म सृष्टि रचना वाली। दूसरे शब्दों में उसके ज्ञान और वल आदि की अथवा उसके अन्य गुणों और स्वभावादि की। क्योंकि वहुत से व्यक्ति कद में गट्टे या छोटे होते हुए भी अपने गुणों और कर्मों में दूसरे लम्वे लोगों से वड़े देखे जाते हैं।

सुना है कि कोई कोई महानुभाव नाप वाली दृष्टि से कहते हैं कि जहां तक विश्व है वहां तक प्रभु है। कोई कह सकते हैं कि जहां तक प्रकृति है वहां तक प्रभु है। कोई यह भी कह देंगे कि जहां तक संसार है वहां तक प्रभु है। और जव संसार और विश्व के भेद का प्रश्न उपस्थित होगा तो कह देंगे कि यद्यपि संसार को World और विश्व को Universe कहते हैं—परन्तु हमारा तात्पर्य विश्व से ही था। उस के किसी एक भाग से नहीं। तात्पर्य यह कि जहां तक प्रकृति है अथवा उस उपादान से रची हुई जगती है, वहां तक प्रभु है। जगती में जो जगत है-वहां तक का तो कहना ही क्या?

यहां विचार यह है कि वहां तक भी प्रभु है—परन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं कि वहां तक ही प्रभु है। हमें ऐसा सोचना पड़ेगा कि हमने एक, दस, सौ········शंख, दस शंख और उसमें एक शून्य और वढ़ाकर जो महाशंख की गिनती सीखी है, यद्यपि उस गिनती के द्वारा भी हमारे गिनने में प्राय: जीवन भर कोई वस्तु ऐसी नहीं आती कि जिसकी गिनती हम यहां शंख तो क्या दस नील, नील या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दश पदम अथवा पदम में भी कर सकें—परन्तु हमारे जीवन में गण-नीय वस्तुओं से क्या लेना? प्रश्न तो यह है कि उस महाशंख संख्या में भी यदि कई शून्य वढ़ा दिये जावें अथवा महाशंख संख्या का महाशंख संख्या से गुणा कर दिया जावे तो गुणनफल रूप प्राप्त भी कोई संख्या अवश्य आयेगी ही। यह वात दूसरो है कि हमारी जानी हुई या संख्यात महाशंख से उसकी गणना आगे जाने से हम उसे असंख्यात, असंख्य, अगण्य या अनन्त भले हीं कहने लगें और फिर उस गुणनफल को भी उतनी ही संख्या से गुणा करके आये हुये गुणनफल को भी उन्हीं असंख्य या अनन्त शब्द से पुकारें परन्तु गुण्य या गुणक को भी असंख्य कह कर सन्तोष कर लेना और फिर उन दोनों के गुणनफल को उसी असंख्य शब्द से पुकार देना इस, लिए कुछ अधिक मूल्य नहीं रखता कि गुण्य या गुणक और उन दोनों के गुणनफल में एक वहुत वड़ा अन्तर होते हुए भी हम दोनों को एक ही असंख्य शब्द से पुकार दिया करते हैं। परन्तु असंख्य, असंख्य में भी अन्तर, यह फिर एक आश्चर्य ही रहेगा।

वात स्पष्ट है कि यह असंख्यत्व या अनन्तत्व हमारी दृष्टि से ही है—क्योंकि हमारी पहुंच के अनुसार हमारी परिभाषा में फिर उसकी कोई संख्या नाम नहीं परन्तु इतना पता तो हमें भी है कि यह गुणनफल अमुक अमुक संख्याओं के गुणन से प्राप्त हुआ है। तव क्या प्रभुवर उस गुणनफल का नाम किसी संख्या में भले ही न धरें (और हमारे लिये अनुपयोगी होने से वेद में आगे नाम न दें) उस की यथार्थता से ठीक ठीक जानकार नहीं है—और अवश्य जानकार हैं इसी प्रकार हमारे मुख से 'सर्वत्र' कह दिया जाना तो वड़ा सरल हैं और यह भी सही है कि सर्वत्र का नक्शा हमारे दिमाग से वाहर की वात है परन्तु प्रभु हमारे सर्वत्रपने को भलीभांति जानते हैं। और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधर उन्हें अपनी अनन्तविद्यमानता का पूर्ण ज्ञान है—क्योंकि जो वस्तु जैसी हो उसको वैसा ही जानना यथार्थ ज्ञान है—उसके विपरीत जानना ज्ञान नहीं। इसलिए ज्ञानी प्रभु भी अपनी विद्यमानता को अनन्त ही जानते हैं—उसे वे सान्त जाने तव तो ज्ञानी ही न रहेंगे।

परमात्मा सूक्ष्मतम होने से समस्त प्रकृति में हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसलिए जहां तक प्रकृति है—वहां तक तो प्रभु है ही—परन्तु वहीं तक नहीं हैं। यदि प्रकृति से भिन्न अस्तित्व रखने वाला जीव, कहीं प्रकृति से असम्पृक्त हुआ भी विद्यमान हो तो प्रभु वहां भी उस जीव में भी विद्यमान है, फिर जहां जीवात्मा प्रकृतिस्थ है—वहां जीवात्मा में परमात्मा है, इसका तो कहना ही क्या, क्योंकि जीवात्मा प्रकृति से सूक्ष्म परन्तु परमात्मा जीवात्मा से भी सूक्ष्म है। इस प्रकार परमात्मा समस्त प्रकृति और जीवात्मों में तो अपनी सूक्ष्मतमता से विद्यमान है ही, साथ ही यदि समस्त प्रकृति और समस्त जीवात्माओं से आगे भी कुछ है, जिसे हम 'रिक्तस्थान', 'खाली जगह' या किसी दूसरे नाम से पुकारें या न पुकार सकें—तो परमेश्वर अपनी महत्तमत्ता से वहां भी है ही क्योंकि वह सूक्ष्मतम के साथ महत्तम भी है और वह एक ही परमात्मा संख्या में अनन्त न होता हुआ भी इस दृष्टि से अनन्त है कि वह प्रकृति और जीवात्मा-के क्षेत्र से वाहर भी विद्यमान है और हम क्या, कोई भी इस वात को नहीं जान सकता कि वह कहां तक विद्यमान है—क्योंकि वह विद्यमान है कहां नहीं?

यह एक दूसरी वात है कि हममें से कोई, कूपमण्डूक की भांति यही दावा करने लगे कि प्रकृति और जीवों के क्षेत्र से आगे कुछ अवकाश या गुंजाइश आदि है ही नहीं, इसलिए प्रभु की नाप वाली महत्ता की इयत्ता इसके आगे नहीं मानी जा सकती—क्योंकि जव 'आगा' ही नहीं, तव वहां मान्यता कैसी?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु हमारी सन्तुष्टि यहां इसलिए नहीं हो रही है कि जहां प्रकृति होगी वहां यदि जीवों के कर्मफल प्रदानार्थ कहीं सृष्टि होगी तो कहीं सृष्टि न होना भी सम्भव है तो उस सृष्टि की रचना सामग्री अथवा हमारी संख्या सम्बन्धि की दृष्टि से अनन्त, उन एक-एक देशी जीवात्माओं के नाप से परमात्मा को नाप देना ठीक नहीं—क्योंकि फिर उसमें सान्तता आ जायेगी। यह ठीक है कि यद्यपि हमारी दृष्टि से तो समस्त सौरमण्डलों के विस्तार वाली रचना भी हमारे शब्दों में असंख्य होने से अनन्त है—क्योंकि हमारी संख्या गणना की जहां समाप्ति हुई—वहीं उसका अन्त कहाया और उसके आगे अनन्त ही अनन्त ने आ दवाया परन्तु फिर भी इन समस्त रचनाओं या इनसे वची हुई भी प्रकृति अथवा समस्त जीवों तक भी, उस प्रभु की महत्ता की इयत्ता ठहरा देना इसलिए ठीक नहीं है कि वेद की खुली घोषणा यह है कि '-एतावान् अयं महान्" अर्थात (इतना=यह समस्त जीवों सहित समस्त प्रकृति क्षेत्र तो) इस (प्रभु) का महिमा हैं (महिमन् शब्द संस्कृत में पुंलिग होने से एतावती=इती नहीं=कहा) न कि जितना यह सव कुछ है-इतना ही वड़ा यह प्रभु है, किन्तु आगे इन शब्दों द्वारा स्पष्ट सुझा दिया कि—"अतो ज्यांश्च पुरुषः" अर्थात पुरुष परमेश्वर तो इससे वहुत ही वड़ा है। अन्यत्र भी प्रभु को इस अनन्त विस्तृति अथवा महिमा के सम्वन्धं में यह कहा गया है कि—"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्" अर्थात जिस परमेश्वर में विश्व एक नोड है अर्थात जैसे किसी वक्ष या मकान में उसके वहुत से स्थान में से काई छोटा सा घोंसला होता है और वह वृक्ष या मकान, उस घोंसले की अपेक्षा कहीं वड़ा होता है—उसी प्रकार यह समस्त विश्व परमेश्वर में एक घोंसला सा वहुत ही छोटा है और वह परमेश्वर इस विश्व की अपेक्षा कहीं महान है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर के इस बड़े विस्तार के विषय में पुरुष सुक्त 'एतावानस्य..........' मन्त्र का 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि" भाग भी यह बताते हुए अच्छा प्रकाश डाल रहा है कि समस्तभूत इस प्रभु के एक पाद रूप हैं—समस्त सृष्टि—प्रलय उस महान परमेश्वर के बहुत थोड़े भाग में हो रहे हैं—ओर इस भाग की अपेक्षा शेष वह इतना अत्यन्त महान है कि इसका पादापेक्षा त्रिपाद दिव् में अमृत है, अर्थात उस दिव्यस्थिति में है कि जहां सृष्टि प्रलय न होने से वहां मृतता की चर्चा ही क्या? अर्थात वह एक बहुत ही बड़ा महत्तम परमेश्वर ऐसा है कि उस अविनाशी का तो कोई भाग न कभी हुआ—न है और न होगा, परन्तु जहां सृष्टि प्रलय हो रही है-उसकी अपेक्षा वहां उसको कहीं अधिक महत्ता है कि जहां प्रभु तो है—परन्तु सृष्टि प्रलय का अभाव है।

इसी भाव का समर्थन यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के पांचवें मन्त्र का—"तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः" भाग भी यह बताकर कह रहा है कि वही परब्रह्म इस सब (विश्वभर) के बाहर वाली ओर में भी है। जब इस सब के कुछ बाह्य है तभी तो तत् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः' कहा। बाह्य के अभाव में किसी को बाह्यतः स्थित कहा ही नहीं जा सकता। यदि इस सब के बाह्य नहीं तो बाह्यतः कहना क्या अर्थ रखेगा? फिर इस कथन का क्या औचित्य? इसी आशय को व्यक्त करने के लिए बाह्य शब्द से सप्तम्यर्थ में तसिल् प्रत्यय का प्रयोग किया गया है।

आप विचार लें कि यजुर्वेद के ३९वें अध्याय के १९वें मन्त्र के "तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" शब्द जब स्पष्ट कह रहे हैं—तब क्या इससे यह स्वयं सिद्ध नहीं हो जाता है कि वह परमेश्वर समस्त भुवनों की, समस्त अन्तिम सीमाओं से भी आगे है—तभी तो वह अस्य सर्वस्य बाह्यतः भी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अनेक वेद मन्त्रों की उपस्थिति में सच तो यह है कि सूक्ष्मतमता से तो वह प्रभु प्रकृति के परमाणु मात्र, और प्रत्येक जीवात्मा के भीतर भी विद्यमान है और स्वयं ही अपनी महत्तमता से इन सब से बाहर भी है और इसीलिये उसकी उस महत्ता की कोई इयत्ता इतनापन नहीं है—नहीं है।

और यदि कोई महानुभाव यह कहें कि एक-एक देशी जीवात्माएँ चाहे जितनी भी हों, वे सब मिलकर भी विस्तार की दृष्टि से अनन्त नहीं हो सकतीं—परन्तु प्रकृति को हम जहां रचित स्थान में सान्त ही मानते हैं—वहां उसमें जहां रचना नहीं हो रही है, उस रचना रहित को विस्तार की दृष्टि से स्वीकार करते हैं, तो यद्यपि प्रथमतः यह प्रमाणित करने का दायित्व उन पर ही रहेगा कि रचना रहित प्रकृति भी अभी कहीं शेष है, कि जिससे उस प्रभु ने अभी तक कुछ बनाया नहीं है और न उससे कुछ बनाने का उस प्रभु का कोई ईक्षता ही है और उसके परमाणु हैं या नहीं? और यदि परमाणु हैं तो वे भी विस्तार में एक-२ देशी ही होने से अन्तिम विस्तार में सान्त न होकर अनन्त कैसे हैं—इस सिद्धि का भार भी उन पर ही रहेगा, फिर भी यदि उनका कथन यही हो कि शेष प्रकृति अन्त रहित होने से विस्तार में अनन्त है—तो हमारा निवेदन यह है कि उस अन्नत प्रकृति में भी सर्वत्र व्याप्त परमात्मा अनन्त ही होने से यही मानना पड़ेगा, और यही मानना चाहिए कि उस प्रभु की महत्ता की कोई इयत्ता नहीं है—कोई इयत्ता नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* परमेश्वर के नामों की व्याख्या *

ओम्—परमेश्वर का मुख्य नाम है, क्योंकि इसमें आये हुए 'अ', 'उ', 'म्' मिलकर 'ओम' नाम बनाते हुये परमेश्वर के अनेक नामों का द्योतन करते हैं और अपने उच्चारण की संगति से परमेश्वर के स्रष्टत्व, पालकत्व और संहारकत्व का निर्देश करते है, तथा प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न 'ओम्' रक्षक है, जो कृष्ण पण्डित के "संसारसागराद् अवति"—लेख के अनुसार अपने सच्चे उपासक को संसार सागर से तार कर सुरक्षित रखता हैं। २—खम्-सूक्ष्मतम होने से आकाश के समान सर्वव्यापक है और आकाशादि एवं जीवात्माओं तक में भी व्यापक है। ३—ब्रह्म-सबसे बड़ा और और सर्वश्रेष्ठ है। ४—अग्नि-जो ज्ञान स्वरूप और जिसके पास जाकर अर्थात् अपने को सांसारिकता के चक्कर से दूर कर जिसे प्राप्त करना चाहिए ओर जो पूज्य है। ५—मनु जो अपने संकल्प से बराबर जगत को बनाता है तथा जो शिष्ट पुरुषों के द्वारा वेदादि शास्त्रों से माना जाता है एवं जो मनन से युक्त है। ६—प्रजा-पति-जो समस्त प्रजा का पति है। ७—इन्द्र-जो परमैश्वर्यंयवान् है। ८—प्राण-जो प्राणवत् सबके जीवन का मूल है। ९—ब्रह्मा जो सम्पूर्ण जगत को रचकर बढ़ाता है। १०—विष्णु-जो सर्व-व्यापक है। ११—रुद्र-जो दुष्टों को उनके दुष्टकर्मों के फल में रुलाने हारा है। १२—शिव-जो सब कल्याणकारक गुणों से सदा युक्त तथा सबका कल्याण करने हारा है। १३—अक्षर-जिसका नाश नहीं होता तथा जो सर्वत्र व्याप्त है। १४—स्वराट-अपने आप से चमकने वाला स्वयं प्रकाशस्वरूप है। १५—कालाग्नि-जो अग्नि के समान काल, अर्थात प्रलयकर्त्ता है। १६—दिव्य-जिसमें सब दिव्य ही गुण हैं, जो विद्या-विज्ञान-सम्पन्न प्रकाशस्वरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है। १७–**सु-पर्ण**-जिसके पालन शोभन हैं अथवा कर्म जिसके पूर्ण हैं। १८–**गुरुत्मान्**-जो गुरु आत्मा वाला अर्थात जिसका स्वरूप महान है। १९–**मातरिश्वा**-जो वायु के समान अत्यन्त वलवान है। २०–**भू (और भूमि)** जिससे प्राणियों के शरीर आदि उत्पन्न होते हैं और जिसमें सब प्राणी होते हैं। २१–**अदि-ति (और आदित्य)** जिसका खण्ड या नाश नहीं है। अविनाशी। २२–**विश्वधाया (और विश्वम्भर)**, संसार को धारण करने वाली सत्ता जो विश्व के धारण और पोषण कर्त्ता है। २३–**विराट्**, विशेष प्रकाशवान तथा विविध जगत को व्यक्तावस्था में लाकर प्रकाशित करने वाला है। २४-**विश्व** सब आकाशादि भूत जिसमें उसकी महत्ता से समाये हुये हैं और जो सब आकाशादि भूतों एवं जीवात्माओं में भी अपनी सूक्ष्मतमता से समाया हुआ है। २५–**हिरण्यगर्भ**, जो आरम्भ में हिरण्य सूर्यादि तेजोमय पदार्थों का गर्भ–उत्पत्ति निमित्त है अथवा हिरण्य सूर्यादि पदार्थ जिसके गर्भ में हैं अर्थात जो इनका अधिकरण है। २६–**वायु**, जो जगत का गन्धन=हिंसन=प्रलय करता है और वायुवत अत्यन्त वलवान है। २७–**तैजस**, जो स्वयं प्रकाश और सूर्यादि तेजस्विलोकों का प्रकाशक है। २८–**ईश्वर**, सर्वेश्वर्यवान् है। २९–**प्राज्ञ**, जो निभ्रांत ज्ञानवान हैं। ३०–**मित्र**, जो सबसे स्नेह करता और सबके द्वारा स्नेह किये जाने योग्य है। ३१–**वरुण**, जो शिष्ट मुमुक्षुओं को स्वीकार करता और जो शिष्ट मुमुक्षुओं के द्वारा अपनाया जाता है। ३२–**अर्यमा**, जो मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को जानता और उनके लिए कर्मों के फलों को पहुंचाता है। ३३–**बृहस्पति**, जो वड़ों से भी वड़ा और आकाशादि तथा ब्रह्मादिकों का भी स्वामी हैं। ३४-**उरुक्रम**, जो महान पराक्रम वाला हैं। ३५–**सूर्य**, जो जंगम और स्थावर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आधार (आत्मरूप) है। जिसके विना इसकी स्थिति असम्भव है। ३६—**आत्मा (और परमात्मा)**, जो सर्वत्र=सव जगत में व्यापक है तथा जो सव जीवात्माओं से श्रेष्ठ है। ३७—**परमेश्वर**, जो सव सामर्थ्य (ऐश्वर्य) वालों में श्रेष्ठ है। ३८-**सविता**, जो जगत का उत्पत्तिकर्त्ता है। ३६-**देव, (और देवी अथवा देवता)** जो क्रीड़ा और विजिगीषा आदि दसों धात्वर्थों में संगत होने से अनेक दिव्य गुण कर्मों से युक्त है। ४०—**कुबेर**, जो अपनी व्याप्ति से सवका आच्छादक है। ४१-**पृथिवी** जो आकाशादिकों से भी विस्तृत है (क्योंकि उसकी अपेक्षा आकाशादि कम विस्तृत हैं।) ४२ **जल**,जो परमाणुओं का घात-प्रतिघात करता अर्थात अव्यक्त से व्यक्त को और एक परमाणु को दूसरे परमाणु से परस्पर संयोग वियोग के लिए हनन प्रति हनन करने वाला है तथा समस्त जगत को जना देता और फिर उसको ले लेता है। ४३—**आकाश**, जो सव ओर से जगत का प्रकाशक है। ४४—**अन्न** (अन्नाद और अत्ता) जो चराचर जगत को प्रलय काल में खा जाता है। जो इस सम्पूर्ण चराचर रूप अन्न का भक्षण करने अथवा अन्त में संहार करने से ('अन्नाद' अथवा 'अत्ता' है। ४५—**वसु**, जिसकी महत्ता से सव जिसमें वसते=रहते हैं, और जो सर्वव्यापकता से सव में वास करता है। और जो दूसरों को वसाने में हेतु है। ४६—**नारायण**, जो अप प्रकृति रूप नारा और उस की प्रथम विकृतावस्था में भी अपना 'अयन'=निवास रखता है और और आनन्द में जिसका अयन है। ४७—**चन्द्र**, जो स्वयं आनन्द स्वरूप है तथा उपासकों को आनन्दित करने वाला है। ४८-**मंगल** जो स्वयं मंगल स्वरूप तथा सव जीवों के मंगल का कारण है। ४६ **बुध**, (और वुध) जो स्वयं सर्वज्ञ तथा सव जीवों के वोध का कारण और सदा सवको जानने हारा है। ५०—**शुक्र**, जो स्वयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त पवित्र तथा दूसरों को भी पवित्रता का कारण है। ५१—**शनैश्चर**, जो अत्यन्त धैर्यवान् है और सब संसार के धैर्य का कारण है। ५२—**राहु**, जो ऐसा एक है कि जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं तथा जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ाने वाला है। ५३—**केतु**, जो सबका निवास स्थान सब रोगों से रहित एवं मुमुक्षओं के जन्म मरणादि रोगों का नाशक है। जो ज्ञानी, ज्ञापक, पूज्य, दुष्टनिग्रहकर्त्ता, दोषापनयनकर्त्ता और प्रलय में जगत का भक्षक है। ५४—**यज्ञ**, जो सब के द्वारा पूज्य, जगत के पदार्थों का संयोजक एवं परोपकारक है। ५५—**होता** जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण किये जाने योग्य पदार्थों का ग्राहक है—एवं पुकारे जाने योग्य है तथा प्रलय में जगत् का अदन=भक्षण=संहार करने वाला हैं। ५६–**बन्धु**, जिसने सब लोकलोकान्तर अपने स्थानों में प्रवन्ध करके यथावत् रखे हैं और बन्धुवत् सहायक है। ५७–**पिता** (पितामह और प्रपितामह)—जो सबका रक्षक तथा प्रलयकाल में जगत् को पी जाने=प्रलय करने वाला है। जो सब पिताओं का भी पिता और पितामहों का भी पिता हैं। ५८–**माता**, जो मातृवत् जीवों की वृद्धि चाहता है और जीवों का लाड़न करता तथा जिसके द्वारा प्राणी निर्मित किये जाते हैं। ५९–**आचार्य**, जो सत्य आचार का ग्राहक और सत्यविद्याओं का प्रापक है। ६०–**गुरु**, जो धर्मयुक्त शब्दों का उपदेशक और अक्षर का निगलने वाला=नाशक तथा प्रलय में जगत् का स्वकारण में निगरण करने वाला है। ६१–**अज**, जो जन्म न लेने वाला है तथा प्रकृति के परमाणुओं को यथायोग्य मिलता है और अज्ञान का नाशक है। ६२–**सत्** (**और सत्य**) जो सदा रहने वाला=अविनाशी और सत्कार्य का साधक है। ६३–**चित्** (**और ज्ञान**) जो ज्ञानस्वरूप चराचर जगत् का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने वाला है। ६४-**अनादि**, जिसका आदि नहीं। ६५-**अनन्त**, जिसका अन्त नहीं। ६६-**निराकार**, जिसका आकार नहीं। जिसके द्वारा कभी आकार प्राप्त नहीं किया जाता। ६७-**निरंजन**, जिसमें छल कपट अथवा अविद्या या अज्ञान एवं अशुभगुण नहीं है। ६८-**गणेश (गणपति और विश्वेश्वर)**, जो सब गुणों=समूहों=जगत् का ईश और पति है। जो विश्वभर का स्वामी है। ६९-**कूटस्थ**, जो कूट (नैकविध-व्यवहार) में आधार होकर भी उनसे प्रभावित नहीं होता। ७०-**शक्ति**, जो पदार्थ-रचना के सामर्थ्य से युक्त है। ७१-**श्री**, जो विद्वानों और योगियों के द्वारा सेवन किया जाता है। ७२-**लक्ष्मी** जो सब जगत् को बनाकर शक्षित-दर्शित कराता है अथवा जो जगत् के चिन्हों नेत्रनासादि अथवा पुष्पफलादि चिन्हों को रचना और प्रकाशक है। ७३-**सरस्वती**, जो सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान तथा धर्म के मूल=वेद का प्रदाता है।७४-**सर्वशक्तिमान्**, जिसको अपने कार्य करने में जो सब शक्तियों अपेक्षित हैं, वे सब शक्तियां जिसमें हैं। ७५-**न्यायकारी**, जो धर्म अथवा न्याय से अथवा पक्षपातरहित होकर व्यवहार करने वाला है। ७६-**दयालु** जो द=अभयदाता, यथावत् गुणदोषों का ज्ञापक, जगत् का रक्षक, दुष्टहिंसक और जगत् पर वात्सल्य से कृपा करने वाला है। ७७-**निर्गुण**-जिसमें जन्मादि अथवा सत्तव, रजस् और तमस् आदि गुण नहीं है। ७८-**सगुण**, जो सच्चिदानन्द गुणों से सह सदा वर्तमान है। ७९-**अद्वैत**, जिसमें दो-पना=द्विवता अथा द्वैत नहीं है जो अद्विवतीय=परमेश्वर है। ८०-**अन्तर्यामी**, जो सब जगत् के भीतर बाहर सर्वत्र, व्यापक होकर सब को जानता और जगत् को नियम में रखता है। ८१-**धर्मराज**, जो धर्म=न्याय=पक्षपातराहित्य से सदा प्रकाशमान है। ८२-**यम**, जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

सब प्राणियों को कर्मफल देने की व्यवस्था करता है और सब अन्यायों से पृथक है। ८३–**भगवान्**, जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त है और सबके द्वारा भजने योग्य हैं। ८४–**पुरुष**, जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है और जो पूर्व से ही विद्यमान है तथा जिसका सब कार्य से पूर्व ध्यान करना चाहिए। ८५–**काल**, जो सब जगत् की संख्या एवं परिणाम का आदि, मध्य और अन्त यथावत् जानता है। ८६–**शेष**, जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात बच रहा है। ८७–**आप्त**, जो सब धर्मात्माओं को प्राप्त तथा धर्मात्माओं के द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य है एवं छल-कपट आदि से रहित है। ८८–**शंकर**, जो कल्याणकर्त्ता और कल्याणप्रदाता है। ८९–**महादेव**, जो स्वयं बड़ा देव है और बड़ों-बड़ों सूर्यादि का भी देव=प्रकाशक है। ९०—**प्रिय**, जो धर्मियों को तप्त (प्रसन्न) करता और सबके द्वारा कमनीय (चाहे जाने योग्य है। ९१–**स्वयम्भू**, जो स्वयं है=जो किसी के द्वारा कभी किसी कारण से उत्पन्न नहीं किया जाता क्योंकि वह सदा है और अनुत्पन्न है। ९२—**कवि** जो (वेद-वाणी द्वारा सम्पूर्ण विद्याओं को मूलतः-) शब्द रूप=उपदिष्ट करता है। ९३—**अचिन्त्य**, जो पुरुषों के चिन्तन में सम्यक् जानने में नहीं आता जो पूर्णरूप से चिन्तन का विषय नहीं है क्योंकि वह अनन्त है। ९४-**निर्भय**, जो सर्वत्र सदा भयरहित है और अपने उपासकों को भी निर्भय बना देता है। ९५—**सूक्ष्मतम**, जो अत्यन्त सूक्ष्म होने से न केवल आकाशादि सूक्ष्मों किन्तु सूक्ष्मतरों में भी विद्यमान है। ९६—**अप्रमेय**, जिसके अस्तित्व को नापा नहीं जा सकता और जिसके गुणकर्म भी असंख्य हैं। ९७—**नित्य**, जो सत्स्वरूप है और जिसका कोई भी कारण नहीं है। जो निश्चय अविनाशी है। ९८–**शुद्ध** जिसमें कभी मलिनता का लेश भी नहीं है जो सब शुद्धियों का हेतु है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९९-**मुक्त**, जो सदा मुक्तरूप=बन्धन रहित है और सब मुमुक्षओं के लिए मुक्ति का साक्षात हेतु है। १००-**आनन्द**, जो सदा सर्वत्र, आनन्दस्वरूप है, जिसमें कभी कहीं कोई क्लेशादि नहीं और जिसमें सब मुक्तात्मायें आनन्द को प्राप्त होती हैं और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है।

(नोट—यहां पर ईश्वर के जितने नामों की व्याख्या विद्वान् लेखक ने की है, इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ईश्वर के इतने ही नाम हैं। ईश्वर के गुणकर्मस्वभाव अनन्त होने से उसके नाम भी अनन्त ही हैं। सम्पादक)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर गुणगान

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि में "विश्वानि देव– अग्ने नयसुपथा" मन्त्र देकर उन पर "अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना" शीर्षक दिया है इसके पश्चात् "स्वस्तिवाचन" और "शांतिकरण" हैं। तात्पर्य यहकि पहले तो ईश्वर की स्तुति करो, उसके स्वाभावादि को जानो, तव प्रार्थना करना। कुछ लोग कहा करते हैं कि जव कर्मफलप्रद ईश्वर हमारे कर्मों का फल देता ही, तव हम सत्कर्म करके ही क्यों न रुक जावें, ईश्वर की स्तुति में व्यर्थ समय नष्ट क्यों करें। इस विषय में हमारा निवेदन है कि क्या ईश्वर की स्तुति करना सत्कर्म नहीं है? यदि है तो उसका सुफल पाने के लिए हम उसे क्यों न करें? दूसरे यह कि जैसे स्थानान्तर को जाने के लिए साइकिल चलाने का सत्कर्म तो हमें करना ही चाहिए परन्तु सामने की ओर से वायु का आना या न आना हमारे वश की वात नहीं, अतः वायु सामने की ओर से न आकर पीछे से आवे, इस साहाय्य पाने के लिए ईश्वर को अपने अनुकूल वनाना आवश्यक है, जो ईश्वर की स्तुति से ही होता हैं। तीसरे सत्यार्थ प्रकाश के सातवे समुल्लास में महर्षि एक प्रश्न के उत्तर में लिखते हैं कि "स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्मस्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।" अव आप स्वयं विचारें कि हम ईश्वर में प्रीतिमान् होकर उसके गुणकर्मस्वभाव से यथाशक्ति अपने गुण कर्म स्वभाव को सुधारें, यही तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मनुष्यत्व या मानवता है कि जिसका मूल ईश्वरस्तुति है। अन्यथा जो ईश्वर में प्रीति नहीं रखते क्या उनमें ईश्वर से विपरीत गुण कर्म स्वभाव आने सम्भव नहीं ?

2360

प्रार्थना का आशय कुछ लोग मांगना समझते हैं, परन्तु हम इसका अर्थ "चाहना" समझकर अपनी शुभ चाहना के अनुकूल यथा ज्ञान-शक्ति कर्म करना और उसकी सफलता के लिए प्रभु की सहाय्य चाहना मानते हैं। मांगने और चाहने वालों में वड़ा अन्तर होता हैं—यह सव बुद्धिमान् जानते हैं। प्रार्थना में सफलता मिलने पर ही उपासना स्वाभिक है। यदि लोग ऐसा करने लगें तो जनता में 'स्वस्ति' का प्रसार होकर 'शान्ति' उभर उठे। इसके विना जो होना चाहिए, प्रायः वह सर्वत्र हो ही रहा है। इन्हीं तीनों को विस्तृत रूप देने के लिए महर्षि अभी "आर्याभिविनय" का उतना ही भाग वना पाये थे कि जिसमें ऋग्वेद के मन्त्रों को मिलाकर कुल संख्या १०८ होती है और माला जपने वाले १०८ दानों की माला जपते हैं, यह स्पष्ट है। स्तुति–प्रार्थना–उपासना से उपरोक्त फल तो प्राप्त होता ही है किन्तु आत्मा का वल इतना वढ़ जाता है कि पर्वत जैसी विपत्ति आ जाने पर भी मनुष्य घवराता नहीं। क्या यह थोड़ी वात है ?

ईश्वर स्तुति–प्रार्थना–उपासना के मन्त्रों का पाठ मात्र ही महर्षि को अभीष्ट नहीं था। वे चाहते थे कि इनके अर्थ भी हमारे हृदयों को स्पर्श करें। तभी तो उन्होने यह लिखा कि उनका अर्थ एक विद्ववान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करें और सव लोग उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें। महर्षि दयानन्द ने उपर्युक्त इसलिए कहा कि वे महर्षि यास्क के निरूक्त को अपना आधार मानते थे और महर्षि यास्क जी निरूक्त में "स्थाणुरयंभारहारः किलाभद्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

धीरय वेदं न विजानाति योऽर्थम्" लिख चुके हैं अर्थात् वेद का पाठमात्र करने से काम नहीं चलता, उसके अर्थ को जानना आवश्यक है। अब तो स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों के अर्थ बहुत छप गये है, अन्यथा यह तो संस्कार-चन्द्रिका और वेदभाष्य में तो बहुत कुछ प्राप्त ही थे।

उपर्युक्त स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण में ऐसे-ऐसे मन्त्र आये हैं कि जिनसे हम कुकाम कुक्रोध, कुलोभ, कुमोह से बचकर निष्पाप जीवन व्यतीत करते हुए सच्ची मानवता पर चल सकते हैं और इन भावों में आये हुए मन्त्रों के अर्थ में रूचि जम जाने पर हम वेद के दूसरे भी बहुत से मन्त्रों के सार्थ पाठ से भी अपने जीवनों को उन्नत कर सकते हैं। अतः हम अवश्यमेव ईश्वर का गुणमान करें और उसके गुणों को ठीक प्रकाशित करने वाले वेद के आदेशानुसार जीवन-यात्रा कर सफल जीवन बनें। आत्मिक उन्नति चाहने वालों के लिए स्तुति-प्रार्थना, उपासना परम आवश्यक है।

यहां यह भी समझ लेना चाहिए कि स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि से ईश्वर हमारे कर्मों के फलों को क्षमा नहीं कर देता। यदि वह ऐसा करे तो उसके न्याय में दोष आता है अतः वह कर्मों का ठीक-२ पूरा-२ ही फल देता है। किन्तु जैसा कि पूर्व लिख आये हैं स्तुति, प्रार्थना, और उपासना आदि भी तो अन्ततः कर्म ही हैं। और जब सब कर्मों का फल अवश्य ही मिलना है तो इस स्तुति-प्रार्थना-उपासना आदि कर्मों का फल क्यों नहीं मिलेगा। अतः इन से पाप कर्मों का फल क्षमा न होते हुए भी इन कर्मों का किया जाना अति आवश्यक है। प्रभु करे कि उसके गुण-गान से हम सबकी उसमें प्रीति हो और हम अपना जन्म सफल कर सकें।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रकाशन–

* प्रभु है भी? लेखक–साहित्याचार्य पं० वल[illegible]
* कर्म फल प्रश्नोत्तरी ,, साहित्याचार्य पं. वल[illegible] तथा सत्यार्थ भास्कर श्री यशपा[illegible]
* मृत्यु और उसका भय सत्यार्थ भास्कर श्री यशपा[illegible]
* मुझे आर्य समाज क्यों प्रिय है? ,, ,,
* विश्व को आर्य समाज की देन ,, ,,
* आर्य समाज ही क्यों? ,, ,, ,,
* सुमन संचय ,, ,, ,,

आगामी प्रकाशन–

प्रार्थना विज्ञान लेखक—श्री यशपाल आर्यबन्धु
धर्म और विज्ञान ,, ,, ,,
भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और आर्य समाज ,, ,,

● क्या आपने आर्य समाज हरथला कालोनी के साहित्य वितरण यज्ञ में अपनीं आहुति डाली है? यदि नहीं तो अब डाल दीजिए। याद रखिये ! साहित्य समाज का दर्पण है। ●

विनीत :—

रामप्रसाद गुप्त प्रधान	हंसराज प्रचार अधिष्ठाता	जगदीश चन्द्र राली मन्त्री
यशपाल आर्यबन्धु का. मन्त्री	सोहन लाल शर्मा प्रचार मन्त्री	कर्मवीर साधक पुस्तकाध्यक्ष

आर्य समाज, हरथला रेलवे कालोनी, मुरादाबाद।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

चौधरी प्रिन्टर्स, मुरादाबाद (फोन–६३४४)